प्रवचन नं. ७५ गाथा १५ श्लोक १४ दिनाङ्क ०१-०९-१९७८ शुक्रवार
श्रावण कृष्ण १४, वीर निर्वाण संवत् २५०४

(समयसार) १५ वीं गाथा। अन्तिम चार लाईन-पंक्ति है। **अलुब्ध ज्ञानियों को....** वहाँ से है, भावार्थ के ऊपर चार लाईनें। सूक्ष्म बात है भगवान! आहाहा! **अलुब्ध ज्ञानियों को तो.....** अर्थात् इन्द्रिय के ज्ञान से जो ज्ञान अनेक प्रकार होता है — परज्ञेयाकार ज्ञान, आहाहा! उसकी भी रुचि छोड़कर, उसका भी आश्रय / अवलम्बन छोड़कर जो अपने त्रिकाली ज्ञायकभाव में दृष्टि लगाते हैं, वे अलुब्ध ज्ञानी हैं। आहाहा! पर्याय में इन्द्रियज्ञान के विषय से अनेकाकार ज्ञान की पर्याय होती है, उसमें गृद्धिपना छोड़कर, आहाहा! चाहे तो शास्त्र का ज्ञान हो, परतरफ के लक्ष्यवाला (शास्त्रज्ञान हो), वह इन्द्रियज्ञान का विषय हुआ। उसमें भी जिसको लुब्धता नहीं कि मैं ज्ञानी हूँ मुझे ज्ञान हुआ — ऐसे लुब्ध नहीं। आहाहा!

अलुब्ध ज्ञानियों को तो, जैसे सैंधव की डली,..... लवण की डली **अन्य द्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके.....** शाक आदि अन्य द्रव्य का व्यवच्छेद-अभाव करके **केवल सैंधव का ही अनुभव किये जाने पर,....** अकेले सैंधव का अनुभव-क्षारपने का अनुभव करने पर, आहा! **सर्वतः एक क्षाररसत्व के कारण....** एक क्षाररस के सत्व के कारण — क्षाररसत्व, क्षार रस-सत्व के कारण अकेला क्षाररस का अनुभव होता है। वह शाक आदि में है, उसको व्यवच्छेद कर अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर, अकेले क्षार का रस स्वाद में आता है।

उसी प्रकार.... यह तो दृष्टान्त हुआ। **(उसी प्रकार) आत्मा भी, परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके....** आहाहा! ज्ञान की पर्याय में इन्द्रियज्ञान के विषय से जो ज्ञान अनेकाकार हैं, उसे यहाँ परद्रव्य कहा। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रियज्ञान से जानने में आया, शास्त्र आदि जानने में आया, तो कहते हैं कि वह भी परद्रव्य है, परद्रव्य का, है? परद्रव्य के संयोग का वह संयोगी (भाव है) आहाहा! गजब बात है! राग आदि तो संयोगी द्रव्य-परद्रव्य है ही परन्तु पर के लक्ष्य से इन्द्रिय से शास्त्र का ज्ञान हुआ, आहाहा! वह भी अपना स्वरूप नहीं। आहाहा! यह तो बहुत धीरज का

काम है प्रभु! इस ज्ञान की पर्याय में शास्त्रज्ञान-सुनकर जो ज्ञान हुआ, वह भी इन्द्रियज्ञान है। उस पर्याय को यहाँ परद्रव्य कहा, क्योंकि अपना स्वद्रव्य ज्ञायकभाव उसमें आया नहीं। आहाहा! ऐसी बात है भाई!

भगवान आत्मा का ज्ञायक एकरूप स्वभाव (है), उसे छोड़कर इन्द्रियज्ञान के विषय से अनेक प्रकार से ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, उसको भी यहाँ परद्रव्य कहा गया है। आहाहा! शरीर आदि तो परद्रव्य है ही; दया, दान, भक्ति आदि का भाव तो परद्रव्य है ही; आहाहा! परन्तु ज्ञान की पर्याय में पर के लक्ष्य से ज्ञेयाकार — स्वज्ञेय को छोड़कर परज्ञेय के आकार में अनेकाकार ज्ञान हुआ, आहाहा! उसको भी परद्रव्य का संयोग का व्यवच्छेद कर... यह संयोगीज्ञान वह परद्रव्य का संयोग है। आहाहा! गजब बात करते हैं न! यह अन्तर स्वभाव जो ज्ञायकस्वरूप (है), उसका ज्ञान नहीं। आहाहा! यह संयोग, इन्द्रिय संयोग और भावेन्द्रिय संयोग और शब्द आदि पर यह संयोग (है), उससे उत्पन्न हुई जो ज्ञान की पर्याय, उसे यहाँ परद्रव्य का संयोग कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पाने के काल में क्या होता है? वह बात है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन के काल में सम्यग्ज्ञान होता है, और सम्यग्ज्ञान के काल में कैसा होता है? यह बात चलती है। आहाहा! निमित्त तो पर है ही परन्तु पर के निमित्त से जो ज्ञान हुआ, उसे यहाँ परद्रव्य का संयोग कहा। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके..... आहाहा! **केवल आत्मा का ही अनुभव किये जाने पर,....** स्वद्रव्य वह यह। आहाहा! चिदानन्द भगवान सहजात्मस्वरूप प्रभु, ऐसा जो आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान से भरा — ऐसे केवल आत्मा का ही, आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, अपूर्व बात है, भाई! पर्याय में अनेकाकार ज्ञान को यहाँ परद्रव्य कहा गया है। आहाहा! संयोगी, संयोग से उत्पन्न हुआ तो संयोगी (ज्ञान) है। जैसे — पुण्य-पाप संयोगी भाव हैं, पुण्य-पाप संयोग से उत्पन्न हुआ संयोगी भाव है, वैसे ज्ञान की पर्याय में संयोग के कारण पर से उत्पन्न हुआ, वह संयोगी ज्ञान है। आहाहा! जैन शासन क्या है? यह बतलाते हैं।

श्रोता : संयोगीभाव या संयोगीज्ञान ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं ? आहाहा ! प्रभु अन्दर ज्ञान की डली... जैसे नमक की डली है, वैसे ज्ञान की डली आत्मा का पिण्ड है, उस तरफ का लक्ष्य करने के कारण... आहाहा ! अकेले ज्ञायकभाव का आश्रय और लक्ष्य करने के कारण पर्याय में परद्रव्य के संयोग से जो ज्ञान हुआ, उसे भी छोड़कर, आहाहा ! परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके, आहाहा ! परलक्ष्यी ज्ञान भी परद्रव्य का संयोग कहा जाता है। गजब बात है। आहाहा !

भाई ! अनन्त काल हुआ, चौरासी में (भटकते हुए) उसमें शास्त्रज्ञान भी अनन्त बार किया है। आहा ! परन्तु वह तो परलक्ष्य से शास्त्रज्ञान हुआ, वह कहीं स्वज्ञान नहीं हुआ। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु का ज्ञान नहीं हुआ। आहाहा ! अलुब्ध ज्ञानी को, जिसकी संयोग में लुब्धता नहीं है और असंयोगी भगवान आत्मा का-**केवल आत्मा का ही अनुभव किया जाने पर....** आहाहा !

क्या बात ? **सर्वतः एक विज्ञानघनता के कारण....** भगवान तो सर्वतः एक, एक विज्ञानघनता के कारण, पर से तो अनेक ज्ञेयाकार ज्ञान, वह एकपना वहाँ नहीं हुआ। आहाहा ! ऐसा मार्ग है, भाई ! वाणी में जड़ की पर्याय है, वाणी जो होती है, वह तो जड़ की पर्याय है। मैं कहता हूँ — यह बात तो झूठ है। आहाहा ! और जो परलक्ष्यी राग आया, वह भी अपना नहीं। वह राग भी परद्रव्य / संयोगी चीज है। आहाहा ! ऐसे स्वाभाविक चैतन्य के ज्ञान बिना पर के निमित्त और संयोग से जो ज्ञान हुआ... आहाहा ! निमित्त से हुआ नहीं है, हुआ तो अपनी पर्याय में, निमित्त से नहीं, परन्तु निमित्त के लक्ष्य से अपने में ज्ञेयाकार ज्ञान जो अनेक प्रकार से होता है, उसे भी यहाँ परद्रव्य संयोग व्यवच्छेद करके कहा गया है। आहाहा !

परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके.... आहाहा ! यद्यपि नियमसार में तो निर्मल सम्यग्दर्शन और ज्ञान की पर्याय को भी परद्रव्य कहा है, क्योंकि जैसे परद्रव्य से अपनी निर्मल पर्याय नयी उत्पन्न नहीं होती, वैसे निर्मल पर्याय में से नयी निर्मल पर्याय उत्पन्न नहीं होती। इस कारण से निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य कहा परन्तु उसकी बात यहाँ नहीं है।

यहाँ तो.... आहाहा! वह संकल्प-विकल्प का अर्थ पहले (कलश १० में) आया था। आहाहा! द्रव्यकर्म, भावकर्म, और नोकर्म को अपना मानना, वह संकल्प / मिथ्यात्व है। पहले आ गया है। समझ में आया? जड़कर्म, नोकर्म, विकल्प आदि-शुभ आदि और नोकर्म, द्रव्यकर्म — नोकर्म संयोगी चीज, भावकर्म, उसे अपना मानना, वह संकल्प मिथ्यात्वभाव है और ज्ञेयभेद से ज्ञान में भेद ज्ञात होना, वह अनन्तानुबन्धी का लोभ है। (विकल्प है) आहाहा! ऐसी बात भाई! बहुत कठिन, समझ में आया?

यहाँ तो परद्रव्य अर्थात् अकेले स्वज्ञेयस्वरूप से ज्ञान हो और एकाकार जो ज्ञान होना चाहिए, उसे छोड़कर अकेले परलक्ष्य में से इन्द्रिय के विषय के-चाहे तो भगवान को सुने, भगवान की वाणी सुने... आहाहा! उससे जो परज्ञेयरूपी ज्ञान की अनेकाकार पर्याय हुई, आहाहा! उसका धर्मी जीव, उसमें लुब्ध नहीं। वह मेरी चीज है और मुझे ज्ञान हुआ — ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा, परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके... आहाहा!

श्रोता : व्यवच्छेद करने की विधि नहीं लिखी गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या? आहाहा! अरे! गेहूँ में से कंकर निकालने की विधि नहीं लिखी कहीं। गेहूँ है न गेहूँ, है न गेहूँ? कंकर है न? उस गेहूँ में से कंकर निकाल देना, वह विधि है, अथवा उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़ना, वही विधि है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! यह गजब काम किया है न! आचार्यों ने भी संक्षिप्त भाषा में कितना गम्भीर भाव भरा है। आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी प्रसिद्धि कौन करे? आहाहा!

श्रोता : समयसार में तो आपने गजब किया है!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मख्याति है न! इस टीका का नाम आत्मख्याति, आत्मप्रसिद्धि (है) आहाहा!

भाई! यह तो धीरजवान का काम है। आहाहा! उतावल से आम नहीं पकता — ऐसा कहते हैं न? उतावल से आम तो नहीं पकते हैं, आपके यहाँ नहीं कहते हैं? यह अम्ब

नहीं, अम्ब, यह बोते हैं तो तुरन्त पक जाते हैं। है ? (श्रोता : भिण्डी तुरन्त होती है।) भिण्डी तुरन्त होती है परन्तु छह महीने में वापस सूख जाती है। भिण्डी का पौधा होता है न ? आता है अपने, यह श्लोक भी आया है। 'भिण्डा, भादू मास का वटकू कहे जरूर हम आये तुम हट जाओ', हम छह महीने में इतने हुए तो बारह महीने में कितने हो जायेंगे ? वट को कहे दूर हो जाओ तुम — इतने बहुत वर्षों में हुए हो, हम छह महीने में इतने बढ़ गये हैं। वट कहता है कि अब छह महीने में आया है, अब सूख जायेगा, अब बढ़ नहीं जाएगा। एक श्लोक आता है। बराबर सब शब्द याद नहीं रहते। यह आता है 'भिण्डा भादू मास का वटकू कहे जरूर हम आये' — ऐसी कोई भाषा है। हम आये अर्थात् कि हम बढ़ गये तो तुम दूर रह जाओ। वट को कहता है दूर हो जाओ, छह महीने में इतने बढ़े और तुम तो इतने वर्ष में इतने बढ़े हो, तो बाद में बारह महीने में कितना बढ़ जायेगा... धूल भी नहीं बढ़ा, सुन तो सही !

ऐसे ज्ञान की ज्ञेय पर्याय में अनेकाकार ज्ञान हुआ तो उसे मानो कि मुझे बहुत ज्ञान हुआ। ओहोहो ! अरे, सुन तो सही प्रभु ! आहाहा ! यह भाद्र महीने की भिण्डी जैसा है। यह भाद्र महीना समझते हो भाद्रपद ? भाद्रपद में भिण्डी एकदम होती है, वृक्ष इतना-इतना परन्तु तुरन्त सूख जाता है, फिर आसोज महीने में.... आहाहा ! परज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, वह इसमें लुब्ध है तो वह अनादि मिथ्यादृष्टि है, निगोद में चला जाएगा, वहाँ तो यह परज्ञेयाकार ज्ञान भी नहीं रहेगा। आहाहा ! क्योंकि स्वभाव से उत्पन्न नहीं हुआ और परद्रव्य के अवलम्बन तथा इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ, वह नाशवन्त हो जाएगा। आहाहा !

भाई ! मार्ग अलग, बापू ! आहाहा ! यह किसी को कहकर समझाना है कि ऐसी बात ! अन्दर में है यह वस्तु। आहाहा ! यह कहते हैं इतना तीन लाइन में तो कितना भर दिया है। आहाहा ! जैसे लवण की डली का स्वाद लेने के कारण, अनेक शाक आदि में जो लवण दिखता है, उस परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर अकेले लवण का स्वाद लेनेवाला लवण का स्वाद लेता है, वैसे अपनी पर्याय में इन्द्रिय-द्रव्य और भावेन्द्रिय तथा बाह्य वस्तु के निमित्त से जो ज्ञेयाकार अनेक प्रकार ज्ञान हुआ, उसका लक्ष्य छोड़कर आहाहा ! उसका रस और प्रेम छोड़कर.... उसमें मेरी अस्ति है — ऐसी बात छोड़कर, आहाहा ! समझ में

आया ? गजब काम, टीका ऐसी ! आहाहा ! स्वद्रव्य जो भगवान आत्मा, आहाहा ! वह परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके अर्थात् उस ओर का लक्ष्य छोड़कर, आहाहा ! **केवल आत्मा का ही अनुभव किये जाने पर,....** आहाहा ! गजब बात है ! १५ वीं गाथा, यह जैन शासन ! अकेले भगवान आत्मा... **आत्मा का ही अनुभव किये जाने पर,....** ज्ञायकस्वभाव से प्रभु भरा पड़ा है, उस ओर का अनुभव करने पर, आहाहा ! **सर्वतः एक विज्ञानघनता के कारण....** आहाहा ! एक विज्ञानघन हुआ। आहाहा ! जिस ज्ञान की पर्याय में अनेकता की धारा बहती थी, वहाँ घन नहीं था। समझ में आया ? शास्त्रज्ञान – 'सब शास्त्रन के नय धारि हिये मत मंडन खंडन भेद लिये; यह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न परयो। अब क्यों न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से; बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे, मुख आगल है कह बात कहें।' आहाहा ! (यह कवित्त) श्रीमद्जी का है। श्रीमद् थे गुजराती परन्तु उन्होंने हिन्दी में बनाया है। आत्मज्ञान होने के बाद यह थोड़ा हिन्दी बनाया है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं.... गजब, दो लाइन में तो कितना भरा ! आहाहा ! यह सन्तों की अन्दर दशा तो देखो ! हैं ? कहते हैं कि हमको गुरुगम से वाणी मिली और ज्ञान हुआ, उसका भी मैं उसमें लुब्ध नहीं। आहाहा ! परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके केवल आत्मा — अकेले भगवान आत्मा का ही अनुभव किये जाने पर... जैसे शाक आदि का लक्ष्य छोड़कर अकेले लवण का स्वाद लेते हैं, वैसे ज्ञेयाकार अनेक प्रकार की पर्यायों का लक्ष्य छोड़कर, केवल अकेले आत्मा-भगवान पूर्णानन्द प्रभु.... आहाहा ! वस्तु ऐसी है, ऐसी बात है प्रभु ! क्या हो ? लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो सब व्यवहार उड़ा देते हैं। व्यवहार उड़े तो निश्चय पाये। राग की रुचि छोड़े, तब निश्चय पाते हैं। इसी प्रकार परलक्ष्य के ज्ञान का लक्ष्य छोड़े तो स्वज्ञान होता है। आहाहा !

केवल आत्मा-अकेले भगवान आत्मा का अनुभव किये जाने पर सर्वतः (अर्थात्) चारों ओर से एक विज्ञानघन, बस ! अनेक ज्ञेयाकार का ज्ञान था, उसका लक्ष्य छोड़कर इस एकरूप त्रिकाली भगवान का एक विज्ञानघनता के कारण ज्ञानरूप से स्वाद में आता है। जैसे लवण का स्वाद लेने से, शाक की ओर का लक्ष्य छोड़कर

लवण का स्वाद लेने से लवण का स्वाद आता है। वैसे ज्ञेयाकार-अनेक प्रकार की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, एक केवल आत्मा का अनुभव करने पर ज्ञान का स्वाद आता है। आहाहा!

ज्ञान की पर्याय में अनेकाकार ज्ञान है, उसका 'राग' स्वाद है। आहाहा! और यह सर्वतः एक विज्ञानघनता के कारण अन्तर में अनुभव करने पर ज्ञानरूप से स्वाद में आता है। भगवान तो ज्ञान में 'ज्ञान' स्वभाव स्वाद में आता है। ज्ञान के साथ 'आनन्द' है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान के साथ आनन्द है, वह ज्ञान स्वाद में आया — ऐसा कहा गया है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हुआ-अकेले केवल आत्मा के अनुभव के कारण (सम्यग्ज्ञान हुआ), आहाहा! तो अकेले ज्ञानचेतना का आनन्द का स्वाद वहाँ आता है। आहाहा! उसका नाम सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! और वहाँ भव का अन्त होता है — भव का व्यवच्छेद हुआ। आहाहा! भव और भव के भाव से भिन्न अपने स्वभाव की एकता का अनुभव हुआ तो भव का अन्त हो गया। आहाहा! वह सुख के-मोक्ष के पन्थ में आया। सुख के पंथ में (आया) (पहले) दुःख के पंथ में था। आहाहा! ऐसी चीज है भाई! वाद-विवाद करे तो इसमें कहीं पार पड़े - ऐसा नहीं है। आहाहा!

सर्वतः एक विज्ञानघनता के कारण.... आहाहा! अकेले ज्ञानघनपिण्ड प्रभु आत्मा का अनुभव करने पर **ज्ञानरूप से स्वाद में आता है।** अज्ञानी को ज्ञेयाकार अनेक प्रकार से ज्ञान में राग का स्वाद था, जहर का स्वाद था। आहाहा! अपने केवलज्ञान का अनुभव, केवल आत्मा का अनुभव करने पर अमृत का स्वाद आता है। समझ में आता है? डालचन्दजी! यह बात भोपाल में नहीं है कहीं वहाँ। आहाहा! आत्मा में है — ऐसा कहते हैं। यह तो भोपाल में नहीं — ऐसा कहा। आहाहा!

श्रोता : इसीलिए तो सोनगढ़ में आये हैं, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ में भी नहीं है, यहाँ आत्मा में है। आहाहा! गजब बात है प्रभु! यहाँ से सुनने में जो ज्ञान होता है, वह भी परज्ञेयाकार ज्ञान है, भगवान! अर..र! उसमें से भी लुब्धपना छोड़कर, आहाहा! पहले यह ज्ञान नहीं था और हम तो घर में थे न, यहाँ हुआ तो इतना तो नवीन हुआ न? नहीं प्रभु! यह नवीन नहीं है प्रभु! आहाहा! पर

इन्द्रियज्ञान से जो ज्ञान होता है,... भगवान को भगवान की वाणी को भी इन्द्रिय कहा गया है। (समयसार) ३१ गाथा में (कहा है)। आहाहा! क्या वीतराग मार्ग!

श्रोता : भगवान को इन्द्रिय नहीं कह सकते?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को इन्द्रिय कहा है। अपनी अणिन्द्रिय के अतिरिक्त द्रव्य इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और पर - सबको इन्द्रिय कहा है, ३१ गाथा — **णाणसहावादिय -मुणदि आदं, मुणदि,** भिन्न। इन तीनों को संस्कृत टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने इन्द्रिय कहा है। जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, और उसका विषय — स्त्री, कुटुम्ब परिवार, देश और भगवान और भगवान की वाणी सबको इन्द्रिय कहा गया है। आहाहा! गजब बात है। भाई! प्रभु का मार्ग अलग, भाई! आहाहा! अनन्त भव का अन्त लाना, वह कोई साधारण बात नहीं है, भाई!

ज्ञानरूप से स्वाद में.... जैसे उस शाक आदि का व्यवच्छेद करके, अर्थात् लक्ष्य छोड़ करके अकेले लवण का स्वाद आनेवाले को लवण का स्वाद आता है, वैसे परद्रव्य अर्थात् परज्ञेयाकार जो ज्ञान आदि है, उसका लक्ष्य छोड़कर अकेला भगवान विज्ञानघन स्वरूप यह आत्मा है, उसका अनुभव करने पर ज्ञान का स्वाद, आनन्द का स्वाद, शान्ति का स्वाद, स्वच्छता का स्वाद, प्रभुता का स्वाद (अभेद स्वाद) वहाँ आता है। आहा! आहाहा! ज्ञानचन्दजी! यह ज्ञान! यह भगवान तेरी बलिहारी है नाथ! तेरी चीज अन्दर क्या है... आहाहा! यह विज्ञानघन भगवान तो अन्दर है, जिसमें पर्याय का होना भी उसमें नहीं। आहाहा! परन्तु विज्ञानधन का अनुभव करने पर जो पर्याय होती है, उसमें ज्ञान का — आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो वीतरागमार्ग है प्रभु! यह वीतरागमार्ग अर्थात्? इस पर्याय में वीतरागी ज्ञान उत्पन्न हुआ, इस पर्याय में वीतरागी दृष्टि उत्पन्न हुई, इस पर्याय में वीतरागी आनन्द आया.... वह इन्द्रिय का आनन्द था, वह राग था, दुःख था। आहाहा! अरे...रे! समझ में आया? कल कहा था, परमार्थवचनिका में (आया है) — परसत्तावलम्बी ज्ञान भी मोक्ष का मार्ग नहीं — ऐसा कहा था। पहले के तो बनारसीदास, टोडरमल... ओहोहो!

वह चर्चा हुई न खानिया में, तो सामनेवाले कहें कि आचार्यों का कथन और हमारे

पण्डितजी (फूलचन्दजी शास्त्री) कहें पण्डितों का भी कथन लेना पड़ेगा। परन्तु वे पण्डित, वे ज्ञानी हैं तो यथार्थ बात की है। यह सम्यग्दृष्टि हो, चाहे जो हो तो वस्तु को तो यथार्थ ही कहता है। स्थिरता में अन्तर है। फूलचन्दजी ने लिया था — पण्डितजी कहें उसको भी लेना पड़ेगा। आहाहा! है?

श्रोता : आचार्यों का ही लेना पड़े तो नियमसार की टीका तो मिथ्या हो जायेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, नहीं, यह कहाँ है पता है? उसमें भी वे झूठी सिद्ध करते हैं। यह आंवलिका का भाग किया है न, जरा उसमें एक शब्द है तो उसमें खोटी... वह तो एक सामान्य बात है। आंवलिका का भाग है, वह कुछ नियमसार में है, ख्याल है, ऐसी भूल निकालते हैं, रतनचन्दजी! बापू! भूल नहीं। सन्तों की भूल नहीं होती। आहाहा! स्थिरता में कोई भूल होवे परन्तु दृष्टि और ज्ञान के अनुभव में जरा भी भूल नहीं होती। पुलाक और बकुश आदि में जरा दोष स्थिरता में लगता है। वस्तु में — दृष्टि और ज्ञान में बिल्कुल दोष नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अन्दर में भगवान ज्ञानसूर्य तपता है न, आहाहा! ज्ञान-जिनचन्द्र वह आत्मा है, शीतलता के वीतरागी शीतल स्वभाव से भरा प्रभु, आहाहा! विज्ञानघन आनन्दघन, शान्तघन, स्वच्छता का घन, प्रभुता का घन, वह आत्मा है। आहाहा! उस ओर का अनुभव करने पर संयोगी ज्ञान का भी व्यवच्छेद अर्थात् लक्ष्य छोड़कर.... आहाहा! ज्ञानरूप से स्वाद में आता है। आहाहा! भाषा तो सादी है, भाव गम्भीर है भाई!

एक व्यक्ति कहता है कि आप समयसार की इतनी महिमा करते हैं — एक-एक पद में माल भरा है तो मैंने तो पन्द्रह दिन में तो सारा समयसार पढ़ लिया। अच्छा? ऐसा कोई आया, पण्डितजी! ऐसा आया। मैंने कहा — भाई! इस समयसार में एक-एक पद में महागम्भीरता है, पूरी गाथा की तो क्या बात करना! परन्तु एक शब्द 'वंदित्तु सब सिद्धे.... जीवो चरित्त दंसण णाण ठियो' एक-एक पद में उसकी गम्भीरता का पार नहीं, प्रभु! आहाहा! तब कहे — हमने तो पन्द्रह दिन में पढ़ लिया। पढ़े, अक्षर लिखे हैं वे पढ़े, उसमें क्या है?

श्रोता : दो रात्रि जगे और पढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जग जाये और फिर पढ़ा करे उसमें क्या ? अक्षर... अ, आ, क, ख, उसमें क्या ? बापू ! यह समयसार जगत का — भरतक्षेत्र का चन्द्र-सूर्य है, अद्वैत चक्षु है। यह आया न ! समयसार में अन्तिम कलश है — अद्वैत चक्षु, अद्वैत चक्षु, अजोड़ चक्षु.... अन्त में समयसार, समयसार अर्थात् शब्द और समयसार अर्थात् आत्मा। समझ में आया ? आहाहा !

ओम्कार है न ? बनारसीदास ने लिया है 'ओम्कार शब्द विशद याके उभयरूप' — बनारसी विलास में लिया है। ओमकार शब्दे विशदरूप एक आत्मिकभाव, एक पुद्गल को — ओम के दो शब्द लिये हैं। एक ओम् आत्मस्वरूप वह ओम् और एक विकल्प उठता है कि 'ओम्' यह शब्द है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ आया नहीं, बनारसीदास का ? हाँ, प्रमेय माहात्म्य में लिया है। बनारसी विलास बहुत वर्ष पहले देखा था और वह गुप्त बात थी तो मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में पीछे तीनों छपा दिये हैं। 'ओमकार शब्द विसद यांके उभयरूप, ओमकार शब्द विसद यांके उभयरूप एक आत्मिकभाव एक पुद्गल को....' आहा...हा... ! 'शुद्धता स्वभाव लिये उठ्यो रायचिदानन्द....' भाव ओम में उठ जाना है, अन्दर में, तो अन्दर से शुद्धता प्रगट हुई.... आहा...हा... ! 'शुद्धता स्वभाव लिये उठ्यो रायचिदानन्द, अशुद्ध विभाव लहि प्रभाव जड़ बल को....' आहा...हा... ! 'त्रिभुवन त्रिकाल जाके व्ययध्रुवउत्पाद ज्ञाता को स्वभावभाव नहीं लाभ थल को, बनारसीदास जो के ओमकार वास जैसो प्रकाश शशिपक्ष के शुक्ल का॥'

आहाहा ! फिर ज्ञान की बात ली है। है न यह तो बहुत वर्ष पहले, (संवत्) ९१ वें में जब देखा था तो बाद में छपाया, कहा ऐसी बातें गुप्त रह गयी हैं। आहाहा !

यहाँ कहते हैं आहाहा ! निमित्त का तो लक्ष्य छोड़ दे, राग का तो लक्ष्य छोड़ दे परन्तु ज्ञान की पर्याय में अनेकाकार जो पर के लक्ष्य से हुआ, उसका भी तू लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा ! और अकेला विज्ञानघन भगवान आत्मा का अनुभव करने से ज्ञान का स्वाद आता है, अकेले स्वभाव का स्वाद आता है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। आहाहा ! उसका नाम भावश्रुतज्ञान है, उसका नाम जैनशासन है। आहाहा ! ऐसी बातें। अरे...रे !

भावार्थ : यहाँ आत्मा की अनुभूति को ही ज्ञान की अनुभूति कहा गया है। है न? आत्मा का अनुभव, वह ज्ञान का अनुभव; द्रव्य का अनुभव, वह ज्ञान का अनुभव। चौदहवीं (गाथा में) द्रव्य का अनुभव कहा, यहाँ ज्ञान का अनुभव कहा। **अज्ञानीजन ज्ञेयों में ही....** ज्ञेयों में ही **इन्द्रियज्ञान के विषयों में ही....** (यह) ज्ञेयों का अर्थ किया। ज्ञेयों में ही अर्थात् क्या? अर्थात् — अर्थात् ज्ञेयों में ही अर्थात् ज्ञेय इन्द्रियज्ञान के विषयों में ही **लुब्ध हो रहे हैं;....** आहाहा! **वे इन्द्रियज्ञान के विषयों से अनेकाकार हुए ज्ञान को ही ज्ञेयमात्र आस्वादन करते हैं....** आहाहा! टीकाकार — यह पण्डित भी कितना करते हैं। समझ में आया?

अब उस चर्चा में कहे (कि) पण्डितों का आधार नहीं लेना। हमारे पण्डितजी कहें पण्डितों का आधार लेना, है? यह बात किसकी है? यह पण्डितजी तो अर्थ करते हैं। आहाहा! भाई! ऐसे अनादर नहीं होता, प्रभु! सम्यग्दृष्टि का कथन मान्य है, अनादर नहीं होता। वह सर्वज्ञ जैसी सम्यग्दृष्टि में जो कथन आता है, ऐसे अनुभवी जीव की ऐसी वाणी दिव्यध्वनि जैसा ही भाव आता है। भाई! तुझे पता नहीं है। आहाहा! आहाहा! वह यहाँ कहा।

इन्द्रियज्ञान के विषयों से.... इन्द्रियज्ञान के विषयों से पर, **अनेकाकार हुए ज्ञान....** है? यह ज्ञान की पर्याय में अनेकाकार-परलक्ष्य से जो ज्ञान हुआ, आहाहा! **उसको ही ज्ञेयमात्र,....** वह मानो अपना ज्ञेय है — ऐसा मानते हैं परन्तु वह परज्ञेय है। उस **ज्ञान को ही ज्ञेयमात्र आस्वादन करते हैं....** आहाहा! अपने ज्ञान को, अकेले इस परज्ञेय का स्वाद लेते हैं (ऐसा) कहते हैं। अपना ज्ञान छोड़कर.... आहाहा! गाथा तो बहुत अच्छी आ गयी है। आहाहा!

श्रोता : भाव का स्पष्टीकरण बहुत अच्छा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह अनुभव बिना समझे नहीं, समझे नहीं, कठिन बात। आहाहा! **इन्द्रियज्ञान के विषयों से....** यह इन्द्रियज्ञान हुआ — शास्त्र से सुना, भगवान को सुना, गुरु को सुना, शास्त्र पढ़ा और ज्ञान हुआ। यह सब **इन्द्रियज्ञान के विषयों से अनेकाकार हुए....** आहाहा! **ज्ञान को ही** — अनेकाकार हुए ज्ञान को ही

ज्ञेयमात्र आस्वादन-आस्वादन करते हैं, वह तो परज्ञेय है, उसको ये आस्वादन करते हैं, स्वज्ञेय को भूल गये हैं... आहाहा! सूक्ष्म है भाई! परन्तु ऐसी बात मिले कहाँ, भाई! आहाहा! समझ में आया?

यह दुर्लभ है, बापू! प्रभु! आहाहा! यह ज्ञेयमात्र करके, **परन्तु ज्ञेयों से भिन्न....** देखो, यह ज्ञान अनेकाकार ज्ञेय से — पर के लक्ष्य से हुआ उसको यहाँ ज्ञानमात्र का, यह ज्ञानमात्र का आस्वाद नहीं करते हैं, ज्ञेयमात्र करते हैं। **परन्तु ज्ञेयों से भिन्न....** यह ज्ञेयाकार अनेक ज्ञान, उससे भिन्न, आहाहा! **ज्ञानमात्र का आस्वादन नहीं करते।** पण्डितजी ने कितनी स्पष्टता की। देखो! पण्डित हैं।

और जो ज्ञानी है... आहाहा! **ज्ञेयों में आसक्त नहीं हैं,....** अनेकाकार ज्ञान की पर्याय हुई, वह परज्ञेय है, आहाहा! वह स्वज्ञेय नहीं है। आहाहा! क्या वाणी सन्तों की! रामबाण है! राम का बाण फिरता नहीं, मारा, डाला, वह तो मर जाये, सामने एकदम! ऐसे वीतरागी सन्तों की वाणी रामबाण है, वह फिरती नहीं। आहाहा! **ज्ञेयों में आसक्त नहीं हैं, वे ज्ञेयों से भिन्न....** इस पर्याय में इन्द्रियज्ञान से अनेकाकार हुआ, उसका लक्ष्य छोड़कर एकाकार ज्ञान का ही आस्वाद लेते हैं। आहाहा! अकेला भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी का स्वाद लेते हैं, स्वज्ञान का स्वाद लेते हैं। वह (अज्ञानी) परज्ञेय का स्वाद लेता है, वह राग.... आहाहा! ऐसी बात है भाई!

जैसे शाकों से भिन्न नमक की डली का क्षारमात्र स्वाद आता है,.... शाक आदि से भिन्न नमक की डली का स्वाद आता है। **उसी प्रकार आस्वाद लेते हैं,....** सम्यग्दृष्टि अर्थात् सम्यग्ज्ञानी। आहाहा! पर्याय में परज्ञेयाकार ज्ञान का स्वाद छोड़कर.... आहाहा! अपना भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु (है), उसका आस्वाद लेते हैं। **जैसे शाकों से** आया न? **क्योंकि जो ज्ञान है सो आत्मा है.....** आहाहा! ज्ञान, वह आत्मा है। **और जो आत्मा है सो ज्ञान है।** ज्ञान, वह आत्मा है; आत्मा, वह ज्ञान है।

इस प्रकार गुण-गुणी की अभेद दृष्टि में.... अभेददृष्टि में **आनेवाला....** गुणगुणी भेद नहीं और **गुण-गुणी की अभेद दृष्टि में आनेवाला सर्व परद्रव्यों से भिन्न,....** अबद्धस्पृष्ट आया न? अपनी पर्याय से एकरूप। अनन्य दूसरा बोल लिया,

अपने गुणों से एकरूप सामान्य-परनिमित्त से उत्पन्न हुए भावों से भिन्न, आहाहा! अपने स्वरूप का अनुभव, ज्ञान का अनुभव है। आहाहा!

यह आया था अनियत में, पर्याय में जो अनेक प्रकार की अगुरुलघु के कारण पर्याय में अनेकता होती है, उसका भी लक्ष्य छोड़कर... समझ में आया? नियत को कहा था न? अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, और असंयुक्त ऐसे भावस्वरूप आत्मा, ऐसा भावस्वरूप भगवान आत्मा, आहाहा! उसका अनुभव करने पर.... आहाहा! ज्ञान का अनुभव है और वह अनुभवन भावश्रुतज्ञानस्वरूप यह अनुभव भावश्रुतज्ञानस्वरूपरूप जिनशासन का अनुभवन है। आहाहा!

गाथा अलौकिक है! इसका भाव, हाँ! भाषा तो भाषा है। यह भावश्रुतज्ञान वह पर के लक्ष्य से ज्ञान तो द्रव्यश्रुत शब्दज्ञान (है।) बन्ध अधिकार में कहा है कि जितना पर के लक्ष्य से ज्ञान होता है, उसे शब्दज्ञान कहते हैं, आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! समयसार है न? आगे बन्ध (अधिकार) में है। सब है, यहाँ तो अठारह बार सभा में चल गया है। यह तो उन्नीसवीं बार चलता है, सभा में, हाँ! अठारह बार तो हो गया, अक्षर-अक्षर का अर्थ (हो गया है)। यह उन्नीसवीं बार चलता है। **जिनशासन का अनुभवन है। शुद्धनय से इसमें कोई भेद नहीं है।** यह जो शुद्धनय का विषय है और विषय में अनुभव होता है और निर्मल पर्याय वह भी शुद्धनय है। शुद्धनय का विषय परिपूर्ण है, इस पर्याय का भेद भी शुद्धनय का विषय नहीं, यह तो व्यवहारनय का विषय हुआ। तो वह छोड़कर शुद्धनय का विषय त्रिकाली ज्ञायकभाव के अनुभव को भी शुद्धनय कहा जाता है। अतः शुद्धनय से इसमें कोई भेद नहीं है। जैनशासन पर्याय श्रुतज्ञान जैन शुद्धनय का अनुभव सब एक ही पर्याय का वाचक है। आहाहा! समझ में आया? लो, यह हो गया।

कलश - १४

अब, इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं —

(पृथ्वी)

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनंतमंतर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालंबते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम्॥ १४॥

श्लोकार्थ : आचार्य कहते हैं कि [परमम् महः नः अस्तु] हमें वह उत्कृष्ट तेज-प्रकाश प्राप्त हो [यत् सकलकालम् चिद्-उच्छलनं-निर्भरं] कि जो तेज सदाकाल चैतन्य के परिणमन से परिपूर्ण है, [उल्लसत्-लवण-खिल्य-लीलायितम्] जैसे नमक की डली एक क्षार रस की लीला का आलम्बन करती है, उसी प्रकार जो तेज [एक-रसम् आलंबते] एक ज्ञानरसस्वरूप का आलम्बन करता है; [अखण्डितम्] जो तेज अखण्डित है जो ज्ञेयों के आकाररूप खण्डित नहीं होता, [अनाकुलं] जो अनाकुल है-जिसमें कर्मों के निमित्त से होनेवाले रागादि से उत्पन्न आकुलता नहीं है, [अनन्तम् अन्तः बहिः ज्वलत्] जो अविनाशीरूप से अन्तरङ्ग में और बाहर में प्रगट दैदीप्यमान है-जानने में आता है, [सहजम्] जो स्वभाव से हुआ है — जिसे किसी ने नहीं रचा और [सदा उद्विलासं] सदा जिसका विलास उदयरूप है, जो एकरूप प्रतिभासमान है।

भावार्थ : आचार्यदेव ने प्रार्थना की है कि यह ज्ञानानन्दमय एकाकार स्वरूप-ज्योति हमें सदा प्राप्त रहो।

कलश - १४ पर प्रवचन

अब, इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं —

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनंतमंतर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालंबते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम्॥ १४॥

आहाहा! अमृत का अमृत कलश है। **आचार्य कहते हैं कि परमम् महः नः अस्तु नः** अर्थात् हमें नः शब्द है न अर्थात् हमें। **हमें वह उत्कृष्ट तेज-प्रकाश प्राप्त हो.....** आहाहा! अमुक प्राप्त तो है ही परन्तु अब उत्कृष्ट प्राप्त हो। आहाहा! हमें तो केवलज्ञान प्राप्त हो, तेज का बिम्ब प्रभु... आहाहा! हमें वह **महः** है न तेज, **अस्तु** — वह उत्कृष्ट तेज प्रकाश प्राप्त हो। आहाहा! हमारा नाथ प्रभु! चैतन्य प्रकाश का पिण्ड वह हमें पर्याय में प्राप्त हो। आहाहा! हमें महाव्रत का विकल्प यह हो और वह हो, यह कोई बात है नहीं। आहाहा!

यत् सकलकालम् चिद्-उच्छलन-निर्भरं.... यत् अर्थात् **कि जो तेज....** भगवान आत्मा का तेज, चैतन्य तेज **सदाकाल चैतन्य के परिणमन से.....** चैतन्य के स्वभाव से **परिपूर्ण है,....** परिणमन का अर्थ चैतन्य के स्वभाव से परिपूर्ण है। परिणमन पर्याय अन्दर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? है? **चिद्-उच्छलन....** है न उच्छलन? उच्छलन का अर्थ परिणमन किया। परिणमन स्वभाव ऐसा त्रिकाल एकरूप है — ऐसा। है न? **यत् सकलकालम् चिद्-उच्छलन-निर्भरं....** वह परिणमन से निर्भर, निर्भर अर्थात् परिपूर्ण। निर्भर, भगवान सकल काल से ज्ञान से परिपूर्ण भरा पड़ा है। परिणमन का अर्थ पारिणामिक स्वभाव। पारिणामिकस्वभाव सहज, ऐसे निर्भरं-परिपूर्ण है, भगवान! आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं। व्यवहार के रसिया को तो ऐसा लगे कि यह सब व्यवहार का तो कुछ कहते ही नहीं। कहते हैं न? व्यवहार, व्यवहार का ज्ञान भी छोड़ने योग्य है, तेरे व्यवहार दया दान के विकल्प तो छोड़ने योग्य है ही, आहाहा! अरे...रे! अनन्त भव किये, प्रभु! जैन धर्म में भी अनन्त बार जन्मा है, जैन का साधु —

दिगम्बर (साधु) भी अनन्त बार हुआ है, प्रभु! आहाहा! हो, नौ पूर्व की लब्धि भी अनन्त बार हुई है, उसमें क्या है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं जो सदाकाल चैतन्य के भाव से परिपूर्ण हैं। **उल्लसत्-लवण-खिल्य-लीलायितम्.... जैसे नमक की डली एक क्षाररस की लीला का आलम्बन करती है,.....** आहाहा! अकेला क्षाररस से भरा है, यह। आहाहा! **उसी प्रकार जो तेज.... एक-रसम् आलंबते एक ज्ञानरसस्वरूप का आलम्बन करता है;....** अर्थात् ज्ञानस्वरूप ही भगवान त्रिकाल है। **अखण्डितम् जो तेज अखण्डित है.....** आलम्बन का अर्थ यहाँ पर्याय नहीं, आलम्बन का अर्थ ज्ञानस्वरूप ही उसका आलम्बन त्रिकाल है — ऐसा। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानसागर भगवान, वह ज्ञान का आलम्बन अर्थात् ज्ञानस्वरूप ही है - ऐसा। **लीला का आलम्बन करती है,....** उसी प्रकार ज्ञानरसस्वरूप का आलम्बन करता है; तेज अखण्डित है। जो तेज चैतन्य के स्वभावभावरस अखण्ड है, पर्याय में भी खण्ड नहीं हुआ।

जो ज्ञेयों के आकाररूप खण्डित नहीं होता,.... देखो, आहाहा! पर्याय में भी जब ज्ञान होता है तो ज्ञेयों के आकार से भी ज्ञान की पर्याय, ज्ञान का स्वाद लेने में खण्डित नहीं होती। आहाहा! ऐसा मार्ग है। **जो अनाकुल है....** भगवान तो अनाकुल आनन्दस्वरूप प्रभु है, आहाहा! **जिसमें कर्मों के निमित्त से होनेवाले रागादि से उत्पन्न आकुलता नहीं है। अनन्तम् अन्तः बहिः ज्वलत्.....** आहाहा! **जो अविनाशीरूप से अन्तरङ्ग में और बाहर में प्रगट दैदीप्यमान है-जानने में आता है,....** आहाहा! अन्तर में अकेला शान्तरस से भरा है और बाह्य में भी शान्तरस दिखने में आता है। शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... आहाहा! भक्तामर में आता है या नहीं? जितने शान्तरस के परमाणु हैं, प्रभु! वे तो शरीर में ऐसे हुए। यह तो अन्दर शान्ति की पर्याय में शान्ति इतनी है कि शान्तरस से तो भरा है, परन्तु पर्याय में शान्ति दिखती है। आहाहा! शरीर में तो शान्तरस के परमाणु परिणमित हुए हैं, वे तो जड़, परन्तु अन्तर में शान्तरस पूर्ण पड़ा है, तो उसकी पर्याय में भी शान्त.... आहाहा! 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में, उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में' ज्ञानरूपी नयन में। आहाहा! आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा अपनी पर्याय में उपशमरसपने आता है। आहाहा! बाहर से और अन्तर से तो दैदीप्यमान-जानने में आता है। **जो स्वभाव से हुआ है — जिसे किसी ने नहीं रचा....** वह तो अनादि-अनन्त है। ऐसा कि स्वभाव से हुआ है, स्वभाव ही ऐसा है — अनादि-अनन्त (है) कोई ईश्वर उसका कर्ता है या किसी ने बनाया है — ऐसी वह चीज नहीं है। वह तो प्रभु आनन्दकन्द, ज्ञानघन, अकृत्रिम अनकिया हुआ है। आहाहा! **जिसे किसी ने नहीं रचा.... सदा उद्विलासं.... सदा उद्विलासं सदा जिसका विलास उदयरूप है....** आहाहा! जिसका अर्थात् **जो एकरूप प्रतिभासमान है,.....** त्रिकाल एकरूप है, ऐसा पर्याय में भासन होता है। आहाहा! है तो सही, परन्तु है वह भासन किसको? है तो है ऐसा, परन्तु पर्याय में ऐसा प्रतिभास होता है कि आहाहा! यह वस्तु अखण्डानन्द परिपूर्ण है। आहाहा! उसको प्रतिभास आया, आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मार्ग ही ऐसा भगवान! जिनशासन-यह ऐसा है। आहाहा! जिनस्वरूपी भगवान के आश्रय से जो अनुभव — आनन्द हुआ, वह जैनशासन है। जैनशासन द्रव्य को नहीं कहा पर्याय को कहा। आहाहा! रागशासन, वह विकारदशा है; जिनशासन, वह वीतरागी दशा है। यहाँ दशा को शासन कहा है। आहाहा! समझ में आया? **एकरूप प्रतिभासमान है।** आहाहा!

भावार्थ : आचार्यदेव ने प्रार्थना की है कि यह ज्ञानानन्दमय एकाकार स्वरूप-ज्योति हमें सदा प्राप्त रहो। आहाहा! कहो, पंचम काल के सन्त, जगत् को-पंचम काल के प्राणी के लिए भी यह बात करते हैं। हमें प्राप्त हो ऐसा तुम्हें भी प्राप्त हो — ऐसा कहते हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)